संस्कृति

अगस्त–सितम्बर
1993

संस्कृति विभाग, उ०प्र०
उपहार स्वरूप भेंट

उत्तर प्रदेश

सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन

अवधांचल में भित्ति चित्रांकन

लेखक – योगेश प्रवीन

अवध संस्कृति के विभिन्न आयामों के सन्दर्भ में एक सशक्त हस्ताक्षर

प्रकाशन : दास्ताने अवध, बहारे अवध, डूबता अवध, लखनऊ नामा, दास्ताने लखनऊ, पत्थर के स्वप्न, कंचन मृग (कहानी संग्रह), History of Lucknow Cantt., Lucknow Monuments.

काव्य : मयूर पंख, शबनम, पीले गुलाब, अपराजिता आदि।

करवा चौथ का प्रसिद्ध आलेखन (मध्य अवध शैली)

मुख पृष्ठ : ज्यूत – कोहबर की एक विशेष रचना (अवध शैली)

संस्कृति विभाग, उ०प्र०
उपहार स्वरूप भेंट

अवधांचल में भित्ति चित्रांकन

दो शब्द

मानव जगत में चित्रांकन की जो भी परम्पराएं आज हमारे सामने हैं वे सब भित्ति चित्रों से ही अवतरित हुई हैं। मानव सभ्यता की आंख खुलते ही इस दुनिया को जिस दृष्टि से देखा था मनुष्य ने, उसका चित्रांकन प्रस्तर पीठ पर ही प्रारंभ कर दिया था। उसके बाद ये अनगढ़ रेखांकन भारतीय जीवन शैली का ललित हाथ पकड़ कर हमारे आवासों तथा देवालयों की दीवारों तक आ पहुंचा और उसके बाद से इन्होंने मनुष्यता का हाथ कभी नहीं छोड़ा। हिन्दुस्तानी जहां कहीं भी रहे कच्चे मकानों में हों या हवेली, महलों में, ये भित्ति अलंकरण उनकी सांसों की तरह उनके साथ साथ रहे हैं।

संसार की सुन्दरतम पेंटिंग्स से भी अधिक प्राणवान परम्परा हमारी लोक कला चित्र–विधि की है, जो बिना किसी राज्याश्रय अथवा विशिष्ट सहयोग के स्वतः पीढ़ी दर पीढ़ी अपना निर्वाह करती रही है। भित्ति चित्रांकन के ये लोक प्रतीक सारे भारत में पर्व–त्योहारों तथा शुभ संस्कारों पर बनाए जाते रहे हैं।

अवध क्षेत्र में अषाढ़ी, नागपंचमी, हरछठ, करवा चौथ, अहोई अष्टमी, दीपावली, छठी, कोहबर, ज्यूत आदि के आलेखन बड़े प्रभावपूर्ण तथा मनोरम होते हैं। समय की गति तथा बदलते परिवेश के साथ साथ ये लोक कलाएं बड़ी तेज़ी से लुप्त होती जा रही हैं। इस कला के सुन्दर नमूने एवं कलाकार, दोनों ही अब दुर्लभ हो चले हैं। श्रम से जी चुराने की आदतें और प्रमादी प्रवृत्ति इस कलात्मक अभिरुचि को छीन कर सुंदर कार्यकुशल हाथों को फूहड़ बनाने पर तुली हुई हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में लोक कलाओं के प्रति उत्साह पैदा करने का उ०प्र० सास्कृतिक विभाग का ये परिलक्ष्य एक स्तुत्य कार्यक्रम है जिसके निर्देश में मैंने कुछ प्रयास किया है। इंस परियोजना में मुझे सहयोग दिया है, इन सबने–

मुख्य सहयोग = रश्मि कामेश

लोक चित्रांकन = श्रीमती चन्द्रकला श्रीवास्तव
श्रीमती माधुरी शुक्ला
श्रीमती निर्मला अवस्थी
श्रीमती मुन्नी अवस्थी
श्रीमती प्रेमलता श्रीवास्तव
श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव
श्रीमती विनोदनी श्रीवास्तव
श्रीमती शीला सिन्हा

कला सज्जा – गौरव

– योगेश प्रवीन

कोहबर का सर्वाधिक प्रचलित आलेखन (अवध)

नागकुल रचना (नागपंचमी पर्व)

भित्ति अलंकरण

मानव जीवन की प्रारम्भिक प्रागैतिहासिक अवधि में भी मनुष्य ने बड़े सहज ढंग से आत्माभिव्यक्ति की है। आदिम युग की गुहाओं में रेखांकित आकृतियां इसी बात को प्रमाणित करती हैं और हम इनको ही लोक कलाओं की वर्णमाला कह सकते हैं।

लोक चित्रांकन की मूल शैली की प्रागैतिहासिक रचनायें, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, की पर्वत कन्दराओं में बड़ी संख्या में मिलती हैं।

अवध की लोक कलाओं का इतिहास धरती के धर्म की तरह प्राचीन है। आदिकवि वाल्मीकि ने अयोध्या को धन वैभव से ही नहीं कला सम्पन्नता से भी ऐश्वर्यवान कहा है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के सोलहवें सर्ग में महाराज कुश के समय में राजभवनों में चित्रांकित मनोरम दृश्यों का सुन्दर सजीव वर्णन किया है जिनमें उपवन, सरोवर, जीव–जन्तु और मोहक नर–नारियों के सुन्दर भित्ति चित्र बने होने की चर्चा है। वात्स्यायन ने नारी की चौथी, छठी और नवीं कला में आलेखन, चौक रखना और मणि सज्जा को, चौसठ कलाओं में गिना है।

इसी क्रम की अविच्छिन्न कला धारा अजन्ता के गौखपूर्ण पड़ावों से होती हुई जन–जन के हाथों तक पहुंची तो लोक कला के रूप में सामने आयी।

वैदिक धर्म में आर्यों की यज्ञ वेदियों के चतुर्दिक् बनी ज्यामितीय सजावट, भित्ति पर लिखे गये प्रणव आकार या स्वास्तिक चिन्ह जैसे मंगल प्रतीक आगे चलकर फूल बूटों को अपने साथ समेट कर मांगलिक परम्परा के रूप में विकसित होने लगे। सनातन आस्था द्वारा इस कला शैली में देवी देवताओं तथा पौराणिक पात्रों का समावेश भी होने लगा। वैष्णव मन्दिरों की भित्ति चित्र सज्जा की कलात्मक पुरवइया घर घर में प्रवेश कर चुकी थी। यहां तक कि यह लोक कला सहजता के साथ घरेलू स्त्रियों के हाथों का चमत्कार बन गई। भित्ति चित्र अलंकरणों को अवध में शुभ प्रतीक, समृद्धि के शकुन और सुख सुहाग का वैभव माना गया है।

ज्यामितीय रचनाएं

लोक आलेखनों में जिन ज्यामितीय रचनाओं को आरेखित किया जाता है उनकी अपनी भाषा है, उनका अपना अर्थ है।

जहां सीधी रेखा सदाचार का प्रतीक है, तरंगित रेखाओं में शक्ति और ऊर्जा का उद्‌बोधन है। चतुर्भुज आयत हो या वर्ग उसे देवमण्डल की संज्ञा दी जाती है। यही कारण है कि करवा, दीवाली, हरछठ, सभी में पूजनीय प्रकरण चतुराकार कक्ष में ही रखे जाते हैं। नवग्रह, षोडश मातृकाएं आदि सभी चार कोनों में आबद्ध बनाए जाते हैं जबकि त्रिभुज मानव मण्डल कहलाता है। इसी तरह षड्‌भुज अपने

करवा चौथ की बेलें (ज्यामितीय)

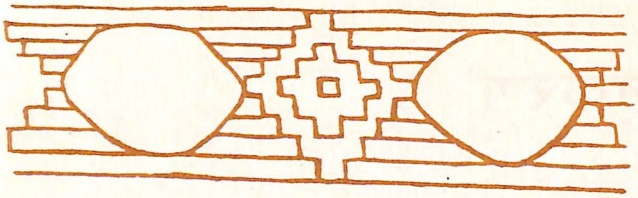

नींबू चटाई की बेल

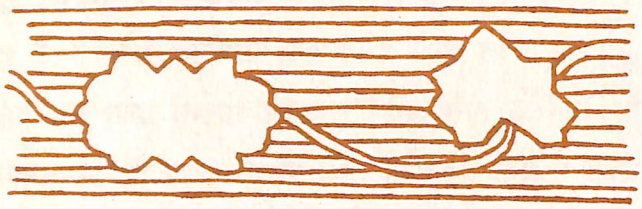

करेले पर की बेल

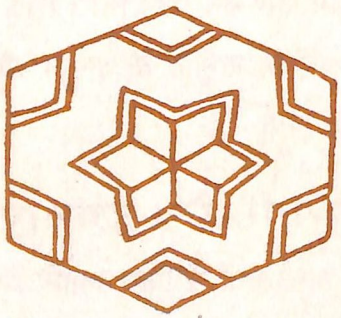

करौं

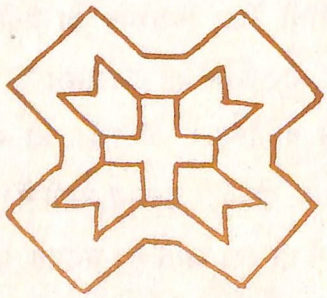

दाल गुल की जाली

छः बिन्दुओं तथा एक मध्य बिन्दु के नाते सप्तऋषि–मण्डल समझा जाता है।

लोक कला में त्रिकोण की रचना तंत्र का बीज चिन्ह प्रकट करती है, जो कि देवी पूजा का आधार है इस प्रकार यह सिद्धि का प्रतीक बन जाता है। इसी तरह कमल का फूल समृद्धि का प्रतीक है। लोक चित्रण प्रतीकों में बनते हैं उनमें चाहे देवता हों, नक्षत्र हों, पशु–पक्षी हों या वनस्पति। इस पूरी प्रक्रिया के सम्पूर्ण विकास में हज़ारों वर्ष का समय लगा है और ये प्रगति यात्रा प्रागैतिहासिक युग से वर्तमान काल तक अनवरत चली आ रही है तब से अब तक। इसीलिए इनमें पदचिन्ह भी बनते हैं। ये पदचिन्ह आदर्श आचरणों के अनुसरण का सन्देश देते हैं, मार्ग–दीप हैं।

लोक परम्परा में ज्यामितीय प्रयोग का जो सबसे सहज आलेखन है, वो एक वृत्त में ६ कलियों का फूल है। जिसमें व्यास शैली में ६ दल बने होते हैं। यह आकृति अक्सर गांव देहात के द्वारों पर सजावटी सन्दर्भ में मिलती है। स्त्रियों द्वारा करवा चौथ, अहोई अष्टमी, दीपावली या सांझी के आस–पास भी इसे बनाया जाता है। यही षट्दल पुष्प बच्चे भी अपनी प्रारम्भिक चित्र कला के दौरान बनाते हुये पाये जाते हैं। दर्शन विद्वान् इस फूल को षट्चक्र का संकेत कहते हैं।

भित्ति चित्रांकन की अपनी भाषा तथा अपनी अलग व्याख्या होती है। यहां सीधीलकीर में सफल प्रयास, आड़ी लकीर में कमनीयता तथा लहरदार संकेत गति की अभिव्यक्ति करता है और इनके साथ सितारा ऐश्वर्य विदित करता है। इसी तरह लाल रंग–सौभाग्य, हरा रंग–सुख, पीला–शुभम्, नारंगी–त्याग, नीला–असीमता, सफेद–सत्य तथा शान्ति, कला–सिद्धि एवं स्थिरता को प्रकट करता है।

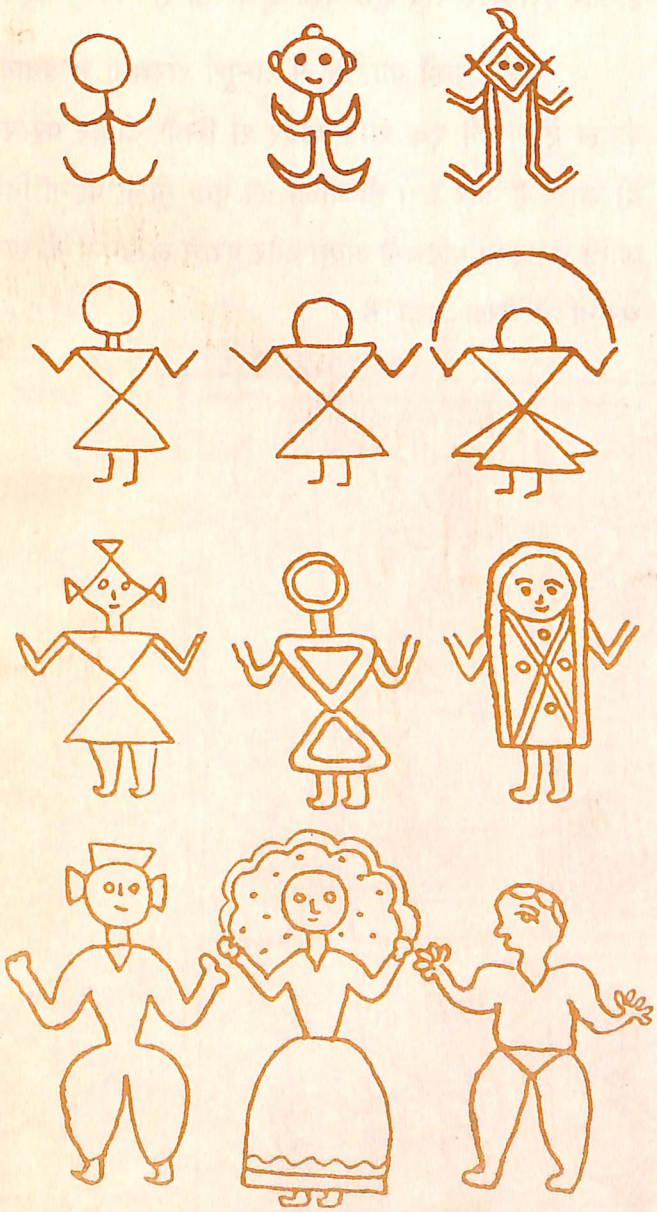

भित्ति चित्र शैली में स्त्री पुरुष के प्रतीक

प्राणि तथा वनस्पति जगत के चित्रण में गाय को सभी देवताओं का सामूहिक स्वरूप समझा गया है। हाथी–ऐश्वर्य, घोड़ा–शक्ति, वृष–पराक्रम, सर्प–तीव्र गति, पक्षी–शगुन तथा मछली–कामना का प्रतीक हैं। इनके अतिरिक्त केला–सन्तति, आम–सुमंगल, तुलसी–कल्याण और ईख–सद्भावना का विचार लेकर लिखे जाते हैं। इसी तरह जल कुंभ–पूर्णता तथा हरियाली–खुशहाली का बिम्ब बनती है।

वर्तमान में कृत्रिम रासायनिक रंगों से ये भित्ति आलेखन लिखे जाने लगे हैं जबकि परम्परागत शैली में प्राकृतिक रंगों का ही उपयोग किया जाता था। इनमें गोबर, मिट्टी, खड़िया, गेरू, नील, प्योरइया, काजल, सिंदूर, ऐपन आदि उपक्रम तो होते ही थे, रंग योजना के लिए हरसिंगार (नारंगी), चुकन्दर (लाल), सेम, बेल और मकोय की पत्ती (हरा), जामुन (नीला), कटहल (बसंती), हल्दी (पीला)–गुड़हल (गुलाबी) आदि का प्रयोग होता था।

शुभ संस्कारों के प्रसिद्ध आलेखन

शादी में जिस कक्ष में देवी–देवताओं की स्थापना होती है उसे सारे अवध में कोहबर ही कहते हैं। इस कमरे में लोक देवता के रूप में एक मातृका भित्ति चित्र बनाया जाता है जिसे 'मइहर' कहा जाता है। मइहर रखने का शुभ नेग बन्ने या बन्नी की बुआ का होता है, जो मण्डप छावन (माड़ो छवाना) के दिन आंगन का कलश गोठती हैं। कलश को गेरू से रंग कर चुटकी से गोबर की अंवठें उठाकर कलात्मक ढंग से सजाया जाता है और फिर उसमें जौ सजाकर उसे सम्पूर्ण किया जाता है।

मैहर द्वार–

मैहर में शुभ दिशा की दीवाल पहले गोबर से लीपी

जाती है फिर गेरू से मातृदेवी का लोकचित्रण किया जाता है। देवी का स्वरूप हजारों वर्ष पुराने परम्परागत ढंग से बनाया जाता है इनकी साज–सज्जा ऐपन से की जाती है। ऐपन से ही हाथ, नाक, गले और पैरों के तमाम गहने बनाये जाते हैं और उनके शरीर में पूजा के विषय लिखे जाते हैं। इनमें अष्ट मंगल चिन्ह आदि के सामान्य शुभ प्रतीक बनते हैं। इस मातृक चित्र को 'मइहर' कहा जाता है जिसे वर या वधू की बुआ या फिर बड़ी बहन ही आंचल में चावल और बताशे लेकर लिखती है। ख़ानदान की बेटियां ही इस चित्रांकन को करती हैं, जो मान्य श्रेणी में गिनी जाती हैं।

उसी समय घर के द्वार पर दायें–बांएं मैहर देवी के द्वारपाल, आल्हा ऊदल की चौकी भी गेरू से खींची जाती है। इसीलिए इस पूरी रचना को 'मइहर दुआर' कहते हैं। अवध में आल्हा–ऊदल की चौकियों के बहुत से नमूने देखने को मिलते हैं, और कहीं–कहीं पर चौकी के स्थान पर आल्हा ऊदल का ही लोक चित्रण किया जाता है। यहां आस्था यह है कि विवाह जैसे बड़े प्रयोजन पर माता निमंत्रण स्वीकार करके घर के अन्दर आ कर बैठ गई हैं और उनके सेवक आल्हा–ऊदल द्वार पर तैनात हो गये हैं और इस तरह सब कुछ बड़ी कुशलता से निपट जाएगा।

कहीं–कहीं कोहबर में सम्पूर्ण संरचना न बनाकर केवल ऐपन की एक थाप गोबर से लिपी दीवार पर रख दी जाती है और उसे ही मौली की एक माला पहना दिया जाता है। ऐसा पश्चिमी अवध और पुराने लखनऊ के खत्री घरानों में देखा गया है।

अवध शैली – प्रसिद्ध नौ थापें

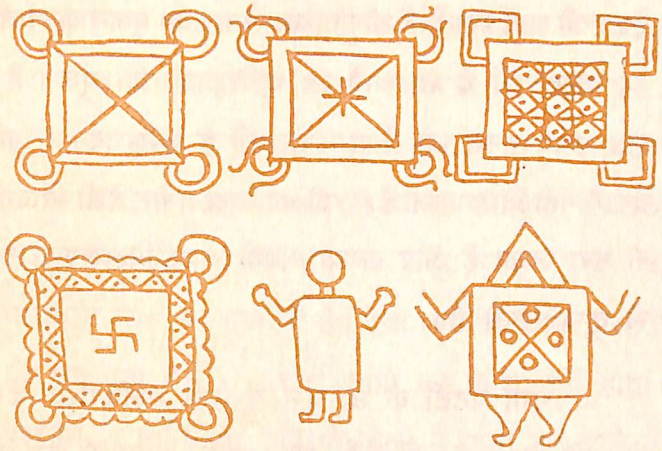

आल्हा ऊदल की चौकी

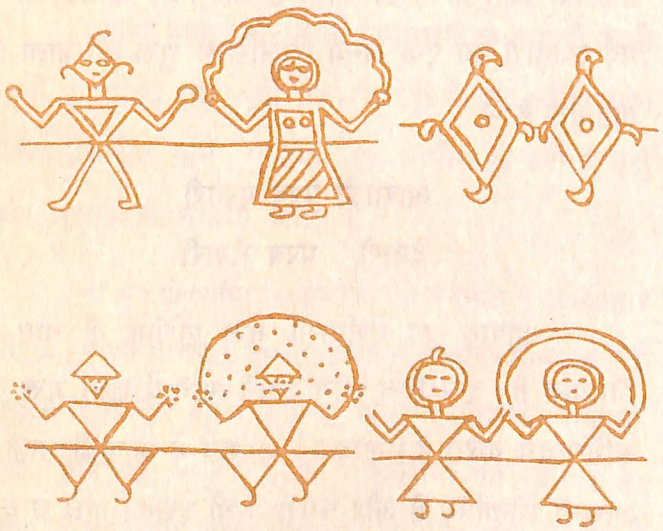

असाढ़ा–असाढ़ी के चित्रण

कोहबर कला–

विवाह–वेदी से उठकर दूल्हा दुल्हन का प्रथम परिचय विनोदरति के साथ जिस कक्ष में होता है वही कमरा कोहबर कहलाता है। इसे "देवतन की कोठरी" भी कहा जाता है। मण्डप से गठजोड़े के साथ वर–वधू यहां लाकर बिठाए जाते हैं। यहां देव चित्रण के सम्मुख एक दिया जलता रहता है जिसकी दो अलग अलग जलती हुई बत्तियां दूल्हा सोने की सलाई से मिलाता है। इसे कंचन दीप कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि इस दिए को देखने से दुल्हन पर नूर चढ़ता है। यहीं दूल्हा दुल्हन पेड़े दही से एक दूसरे का मुंह मीठा कराते हैं जिसे 'लहकौर खिलाना' कहते हैं। फूल की थाली में पानी में हल्दी दूध मिलाकर एक कंगन डाल दिया जाता है जिसे दूल्हा दुल्हन झपट कर उठाते हैं। पांच या सात बार यह प्रक्रिया दुहरायी जाती है और जिससे इन दोनों की हार जीत निश्चित की जाती है। 'कंगना जुआ' के इस खेल को अवध में "पंसासारी" खेलना कहते हैं। पुराने समय में दूल्हा–दुल्हन कम वयस के संकोची और शर्मीले होते थे इसलिए खुद से हाथ लपका के नहीं खेलते थे, दो चतुर नारियां उनका दांया हाथ पकड़कर खेलाती थीं। जानकी विवाह के कोहबर में सीता का हाथ सरस्वती पकड़ कर बैठी थीं और राम का हाथ पार्वती के हाथ में था।

इस अवसर पर दूल्हे की सालियां, सरहजें तरह तरह से चुहल करती हैं और दूल्हा सारे मोर्चे स्वयं संभालता है। यहीं पर ससुराल की वरिष्ठ महिलाओं से नौशे का परिचय कराया जाता है। ये स्त्रियां अपने आंचल का सिरा दूल्हे के हाथ में देती हैं फिर कुछ नज़राना देकर आंचल खींच लेती हैं।

अवध में कोहबर का जो सर्व प्रचलित सहज नमूना

है वह पूरे उत्तर–पूर्व भारत की कोहबर कला का प्राचीनतम नमूना है। कोहबर–भित्तिचित्र कला के रूप में पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा मिथिला बिहार में एक सशक्त तथा विस्तृत कला शैली है, रामायणकाल से जिसका विवरण मिलता है।

अवध के गंगा पट्टी क्षेत्र के कान्यकुब्ज घरों में इसी श्रेणी का कोहबर रखने की प्रथा है जिसे यहां की अपनी बोली में ज्यूत (ज्योति) रखना कहते हैं।

ज्यूत आलेखन–

ज्यूत लिखने में दक्ष स्त्रियां कोहबर की एक पूरी की पूरी दीवार अपनी निपुण उंगलियों से रंग रच कर रख देती हैं। ज्यूत तो रंग बिरंगा सांस्कारिक आलेखन है जिसका विस्तार अधिक से अधिक देखने को मिलता है। पहले औरतें सीढ़ी लगाकर, चहली बांध कर रंग के प्याले ले लेकर ज्यूत रखती थीं, अब इस प्रकार के विस्तृत नमूने केवल कस्बों–देहातों में ही मिलते हैं। शहरों में तो काग़जों पर ही ज्यूत रख कर पूजी जाती है।

ज्यूत की रचना में नीचे बीचो बीच में दुल्हन का एक पारम्परिक चित्र बनता है जिसके दोनों ओर एक विशिष्ट आकृति बनती है। इन्हें कलश कहते हैं। कहीं–कहीं ये दोनों एक जैसे ही बनते हैं और कहीं दो–दो तरह से लिखे जाते हैं, जिन्हें "चाक बांस" कहा जाता है।

इनके ऊपर पालकी के साथ गाजे बाजे सहित पूरी की पूरी बारात बनायी जाती है। एक पंक्ति में मांगलिक चिन्ह पक्षी और फूल–बूटे बनते हैं। एक पंक्ति में गणेश, हनुमान, शिव–पार्वती आदि देवी–देवता लिखे जाते हैं। एक पंक्ति में बेल, हाथी, शेर और ऊंट आदि चित्रित किए जाते हैं। इसकी सम्पूर्ण सजावट बड़ी निष्ठा और बारीकी से की जाती है। इन भित्ति चित्रों में एक सम्मोहन स्वर होता है और उमगो का मदमरा रग रहता है।

छठी–आलेखन–

सारे अवध में नवजात शिशु जन्म के छठे दिन, बच्चे की बुआ गोबर से लिपी हुई पूर्व दिशा दीवार पर ऐपन की थापें रखती है और जच्चा से उसका पूजन करवाती हैं। वास्तव में ये छः थापें छः कृत्तिकाओं का पूजन है। इस समय ननद जो चिराग जलाती है उसे नवजात को देखने नहीं दिया जाता है। छठी का थाल तमाम देशी व्यंजनों से भरा जाता है और ज़च्चा सबके साथ मिलकर उसमें से कुछ खाती है।

गंगा पट्टी के छः घरा में छठी अलंकारिक ढंग से रखी जाती है जिसमें नौ थापें अनिवार्य रूप से लिखी जाती हैं।

पर्व–त्योहारों के भित्ति आलेखन

आषाढ़ मास का अन्तिम दिन "आषाढ़ी पूर्णिमा" का दिन होता है। आषाढ़ चौमासे का पहला मास होता है। वर्षा ऋतु प्रारंभ हो जाती है और फिर आषाढ़ी से तो पर्व त्योहारों का एक लम्बा सिलसिला शुरू हो जाता है। कहावत है –

आसाढ़ी परब पसारी
देवारी, परब नेवारी

आषाढ़ की पूर्णमासी गुरू पूर्णिमा के नाम से विख्यात है। इस दिन लोग अपने आचार्य तथा गुरू का अभिनन्दन करते हैं। लोकपर्व के रूप में आषाढ़ी गांवों में अत्यन्त लोकप्रिय है और नगरों में भी इसका कुछ न कुछ मान होता है।

चिकनी मिट्टी से लिपी हुई दीवार पर गोबर से आसाढ़ा–असाढ़ी लिखे जाते हैं। नर–नारी के ये सांकेतिक चित्रण सारे अवध में बनते हैं परन्तु उनकी रचना में थोड़ा बहुत अंतर पाया जाता है। असाढ़ी घर के द्वार के दोनों ओर द्वारपाल की तरह बनती है या फिर रसोईघर के दरवाज़े पर खींच दिए जाते हैं। इसमें एक स्त्री और एक पुरूष तो बनता ही है कहीं–कहीं पुरुष चार या छः की संख्या में भी बनते हैं। इनके साथ ही गोबर की एक पट्टिका से घर बांध दिया जाता है। वह पट्टिका इन पुतलों के मध्यभाग से होकर गुजरती है। ऐसी मान्यता है कि असाढ़ी पर घर बांध देने से घर में सांपों का प्रवेश नहीं होता। बरसात के महीनों में सांप के बिलों में पानी भर जाने के कारण अधिक संख्या में सांप धरती पर दिखायी देने लगते हैं।

असाढ़ी पर बेड़ही (उर्द की दाल और मसाले से भरी हुई रोटी या पूड़ी) विशेष व्यंजन के रूप में बनती है तथा घुइयां की सब्जी और पूड़ी खाने की प्रथा है।

नागपंचमी–

उतरते सावन की पंचमी नागपंचमी के नाम से जानी जाती है। अवध तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में इस त्यौहार का विशेष प्रचलित नाम "गुड़िया" है। ग्रामीण अंचलों में इसे बड़े उत्साह से मनाया जाता है।

सावन के त्यौहार लड़कियों की मनभावना के त्योहार होते हैं। बालों में गजरे गूंधना, हाथों में मेंहदी रचाना, बजनी पायल पहन कर झूला झूलना, झुलाना, सजना–सजाना, यही हरियाली – तीज और नागपंचमी का त्योहार है। अवध के पश्चिमी जनपद हरदोई के तीन चौथाई भाग में तीज होती है और शेष अवध में गुड़िया मनाई जाती है। तीज में तीज रानी की पूजा की जाती है।

अग्निपुराण में नागपंचमी के दिन नागपूजा करने का निर्देश है। ज्योतिष के अनुसार भी नागपंचमी का देवता नाग है। इस दिन स्त्रियां शुभ दिशा की दीवार पर एक वर्ग में पांच नागों का चित्रण करती हैं। आयत की साज–सज्जा ऐपन की बेलदार रचना से की जाती है परन्तु नाग काजल से ही रखे जाते हैं। गोण्डा तथा अन्य पूर्वी जनपदों में देशी घी से भी नाग लिखे जाते हैं। लखनऊ, लखीमपुर, रायबरेली आदि सभी क्षेत्रों में ये नाग सीधे सीधे पंक्ति में रखे जाते हैं लेकिन बैसवारा तथा उन्नाव में नागपाश या नाग कुल रखने की प्रथा है। यह आलेखन उत्कृष्ट कोटि का तथा आकर्षक होता है जिसमें गणना के उपक्रम का विशेष विधान है। दूब, अक्षत, दूध, गुड़ से या सेंवई से इनकी पूजा होती है तथा इस दिन भीगे गेहूं, चने की घुंघरी छौंकी जाती है।

गुड़ियों के दिन लड़कियां डलिया या मिट्टी के घड़े में गेहूं बोती हैं। यही रक्षाबंधन तक पीतांकुर बन जाते हैं क्योंकि ढक कर संजोई गई सुजियां सुनहरी सोने की सी सुइयां मालूम होती हैं। सनीनों के दिन टीके के समय बहन इन्हें भाइयों के कान पर रखती हैं।

इस दिन बालकृष्ण द्वारा गोकुल की सीमा पर पूतना वध किये जाने की स्मृति में लड़कियां आसुरी प्रतीक की पुतलियां बनाकर घर से दूर कहीं चौबारे पर देवी मंदिर के पिछवाड़े या तालाब के किनारे छोड़ आती हैं जिनको उनके भाई रंगदार छड़ियों से पीटकर नष्ट कर देते हैं।

लड़कियां हिंडोले झूलती हैं, फिर मेले का भरपूर आनंद लेकर अपनी डलिया में हरियाली (दूब या हरी पत्तियां) लेकर घर लौटती हैं। झूला झूलते समय ये डलिया झूले के नीचे रख दी जाती हैं। लड़कियां सावन गाती हैं –

नन्ही नन्ही बुंदियां रे
सावन का मेरा झूलना
छोटी मोटी सुइयां रे
जाली का मेरा काढ़ना

न्योरी नावें–

बैसवारा क्षेत्र में उतरते सावन की नवमी को नौ नेवल की पूजा की जाती है जिसे गांव की बोली में "न्योरी नावें" कहा जाता है। पुत्र–सुख का ये व्रत अधिकतर कान्यकुब्ज परिवार की स्त्रियां रखती हैं। इस त्यौहार पर दीवार पर एक रंगीन आलेखन लिखा जाता है जिसमें काली, सफेद चौपड़ के बीच में विषय रखे जाते हैं। स्त्रियां घुइयां, आलू की सब्जी और उरद की दाल भरी रोटी (बेड़ही) शाम को खाती हैं। इस दिन चाकू से कटी कोई चीज़ नहीं खायी जाती है।

सनीनों–

श्रावण मास का प्रमुख पर्व श्रावणी रक्षाबंधन कहलाता है। जिसे लोकभाषा में "सनीनों" कहा जाता है। रक्षाबंधन हिंदुओं के चार बड़े त्यौहारों में से एक है। वेदों के पठन पाठन का ये उत्सव श्रावणी उपकर्म या ऋषिपर्व कहा जाता था।

पौराणिक आधार से श्रावणी पूर्णिमा के दिन पुरोहित द्वारा यजमान के दाएं हाथ पर आशीर्वाद सहित बांधा गया रक्षा सूत्र ही कल्याणकारी होता है, जिसे बांधते समय वो पढ़ते हैं–

येन बद्धो–बली राजा
दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि
रक्षे माचल–माचल।।

स्त्रियों द्वारा रक्षासूत्र बांधने का प्राचीनतम उल्लेख इन्द्राणी का है।

रक्षाबंधन के दिन बहनें अपने भाइयों के मस्तक पर रोली का टीका लगाकर पगड़ी पर हरी सुइयां सजाकर भाइयों के दाएं हाथ पर राखी बांधती हैं और उनका मुंह मीठा कराती हैं।

राखी का सबसे पुराना स्वरूप पवित्री के नाम से जाना जाता है, जो आज भी कुछ न कुछ प्रचलन में बाकी है। पवित्री में लाल पीले दो धागे होते हैं और जिनके दोनों ओर हरे रंग के फुंदने लगे रहते हैं। पहले कच्चे सूत के इन धागों में एक तार हल्दी और एक तार रोली से रंगा जाता था और उनके सिरे पर हरे रंग की कपास से सावन टांक दिया जाता था। धीरे धीरे सुन्दरता और शोभा की गरज़ से राखी को तरह तरह से सजाया जाने लगा।

रक्षाबन्धन पर घर के द्वार के दोनों ओर ऐपन से चौका लीप कर गेरू से राम राम लिखने की प्रथा है लेकिन ये रीति केवल दक्षिण–पश्चिम अवध की रीति है, जो पश्चिम के प्रभाव से आयी है। शेष भाग में ऐसा प्रचलन नहीं के बराबर है। अवध के सीतापुर जनपद के कस्बों में रसोईघर के दरवाज़े के दोनों ओर गोबर से वर्ग लीप कर ऐपन से सनीनों रखा जाता है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, मछली, तुलसी आदि अष्ट मंगल और पानदान, सुहाग पिटारी बनाए जाते हैं। इन सभी आलेखनों पर सेंवई के साथ पवित्री राखी चिपकाकर पूजा की जाती है।

हर छठ–

भादों मास की सबसे बड़ी प्रतिष्ठा तो यही है कि सोलह कलाओं के पूर्णावतार भगवान श्रीकृष्ण का जन्म इसी मास में हुआ था। वैसे भी भादों में पर्व–त्योहारों की

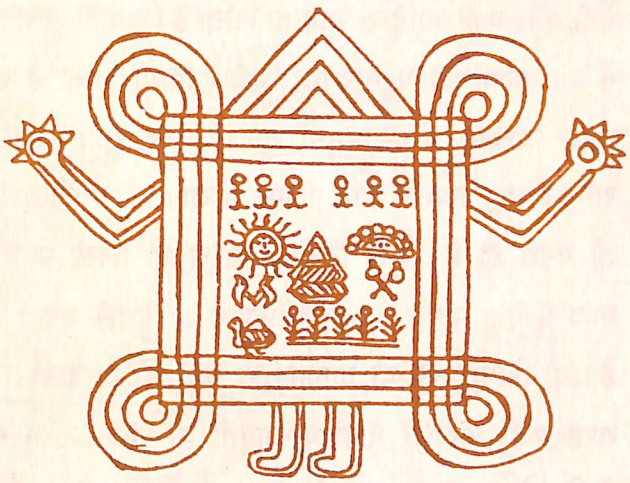

हरछठ पूर्वोत्तर अवध

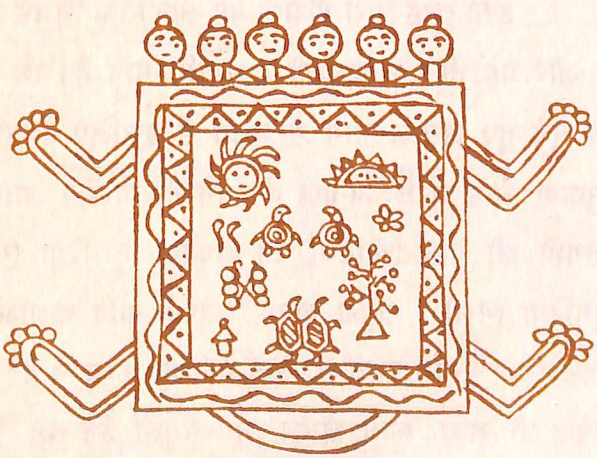

हरछठ पूर्वी अवध

भरमार होती है और बरसात की झड़ी की तरह इन त्योहारों का सिलसिला टूटता ही नहीं है। लगते महीने की अंधेरी–चौथ "बहुला–चौथ" होती है। पुत्रवधू नारियां यह व्रत रखती हैं जिसमें गोरस का तथा कनाय के नाज् (भूसी छिलके वाले जैसे गेहूं, चावल, जौ आदि) का निषेध है। मिट्टी से बहुला गाय, उसके बछड़े और सिंह बनाकर एक काठ के पीढ़े पर रखकर पूजे जाते हैं और यही कथा के प्रसंग हैं। कुछ लोग इसे महासती बेहुला का स्मृति पर्व भी मानते हैं। अवध में मान्यता है कि बहुला से दिन छोटा होने लगता है।

"बहुरा दिन लहुरा"

और फिर बहुला के दो दिन बाद आती है "हरछठ" अर्थात् हलधर षष्ठी, बलरामजी का जन्मदिन। यह त्यौहार अवध में जितनी निष्ठा और उत्साह से मनाया जाता है उतना ब्रज में भी नहीं। अपने बेटों की कुशल कामना के लिए स्त्रियां यह व्रत रखती हैं। हल बलराम जी का आयुध है इसलिए इस दिन हल को विश्राम दिया जाता है। औरतें व्रत में हल का जोता, बोया कुछ नहीं खातीं। महुए की दतून करती हैं और पारण में तिन्नी–पसाई के चावल, भैंस के दूध का दही, तथा नारी का साग खाती हैं।

शुभ दिशा की दीवार पर गोबर से चौकोर लीप कर तिन्नी के चावल के ऐपन से हरछठ रखी जाती है। अवध में ही अलग–अलग इलाके में हरछठ का आलेखन भेद है लेकिन रचना विधि तथा सामग्री एक ही है। हरछठ को लिखकर जब पीले सेंदुर और काजल की बिंदियों से सजाया जाता है तो प्राकृतिक रंगों वाले इस आलेखन का रंग विन्यास देखते ही बनता है।

आंगन में मिट्टी से जलकुण्ड बनाया जाता है जिसे सगरा कहते हैं। उसके साथ बेर, पलाश, गूलर, कास, महुआ, कुश की टहनी लगाकर पूजा की जाती है। पूजा से पहले कुश में छः गाठें लगा दी जाती हैं और मिट्टी की कुल्हियों में गेहूं, चना, धान, मक्का, अरहर और ज्वार इन छः अनाजों का लावा चढ़ता है। यही प्रसाद बच्चों में बांटा जाता है।

जो औरतें हरछठ रखती हैं वे दो दिन बाद कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत नहीं रख सकतीं। सारा घर व्रत से होता है, वे भी अलग रसोई नहीं बनातीं लेकिन दिन में किसी बीच हरछठ के भुने नाज खाकर व्रतभंग कर लेती हैं। बलराम और कृष्ण के मतभेद का यही प्रतीक "छठियाठ" कहलाता है। बल और विवेक उनके अलग–अलग जीवन मूल्य हैं। इसी प्रकार जन्मकुण्डली के चक्र में भी छठे और आठवें घर के ग्रहों में सदा मतभेद रहा है।

हरछठ का भित्ति आलेखन अवध की एक उत्कृष्ट परम्परा है जिसके कई नमूने प्राप्त होते हैं। पूर्वान्चल में कलात्मक ढंग से बनाये गये वर्ग में अष्ट–मंगल तथा अन्य शुभ प्रतीक रखे जाते हैं परन्तु उसमें मातृका की छवि विशेष स्पष्ट नहीं होती। उत्तर मध्य अवध में भी एक आयताकार में सूरज, चन्द्रमा, तुलसी, मछली, गंगा–जमुना, नाव, मंदिर, चौक आदि मंगल चिन्हों के साथ–साथ सिया–सियाऊ का चित्रण होता है। सबसे ऊपर काजल के चार पुतले बनते हैं और उनके नीचे ऐपन से अनेक पुतले बनाये जाते हैं। घर के पुरुषों की गणना करके उसके दो गुने पुतले बना कर तथा उसमें एक बड़ा करके रखा जाता है। इस आलेखन में भी मातृका का कोई आभास भी नहीं बनाया जाता है। कहीं–कहीं गोबर से लिपे हुए एक आयत में केवल ऐपन की छः थापें रखकर काजल, सिंदूर से टीप दिया जाता है और उसे ही लहंगा चूनरी पहना दिया जाता है।

अवध के केन्द्रीय तथा लगभग तीन चौथाई क्षेत्र में जो प्रसिद्ध हरछठ लिखी जाती है उसमें वर्गाकार रचना को स्पष्ट रूप से मातृका स्वरूप में बनाया जाता है। ऊपर गोल या पतंग की आकृति का सुन्दर मुख बनता है तथा हाथ पैर बनाए जाते हैं। इस मातृ रूप को सुन्दर गहनों, बेंदी, शीशफूल आदि से सजाया जाता है। उनकी अन्तरात्मा में जो कलात्मक परम्परागत चित्रण किया जाता है उनमें सूरज, चन्द्रमा, गंगा–जमुना, तुलसी, ईख, सुहाग–सिंगार, सांप, बिच्छू, सपछप कांट, लिपटवां सांप, सरग सीढ़ी आदि तो बनते ही हैं कुछ विशेष प्रकरण भी लिखे जाते हैं। मध्य में एक पलंग पड़ता है जिसमें छः पुतले बनाए जाते हैं। दो सिन्दूर से, दो काजल से तथा दो ऐपन से। इसी तरह कहीं पालकी में शिव–पार्वती या राजा–रानी बनते हैं जिनमें राजा काजल से और रानी सिंदूर से बनती हैं। छः सियाऊ एक पंक्ति में बनते हैं जिनमें अन्तिम सियाऊ पर कुछ बड़े आकार से सियाऊ माता बनती है। यह हरछठ में कही जाने वाली छः कहानियों में से एक प्रमुख कहानी का शीर्षक होती हैं।

इसी तरह नारी भैंसिया का सांकेतिक चित्रण होता है और वह भी एक कहानी का प्रतीकमान है। छः तरह के भुने हुए अनाज भोग में चढ़ते हैं इसलिए चित्रण में 'भुजवा' नाम से छः अनाज के दाने भी दिखाए जाते हैं। निगही की पांत (चीटियों की लकीर), ठुंगरिया (गाय), मुंगरिया (भैंस), महुआ खंमार (चारा) आदि कथाओं के आधार पर बनाये जाते हैं। इस पर्व की कथा में ब्रह्माणी नेवेद्य के साथ 'काम सेन्दुर' भी मांगती हैं। यह "काम सेन्दूर" कच्चे सेन्दूर का दूसरा नाम है। सिंदूर, काजल की सज्जा हरछठ आलेखन का प्रमुख आकर्षण होती है।

हरछठ लोक चित्रण के विविध विषय

अंकुर

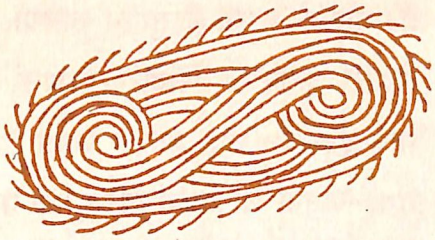

नारी भौंसिया

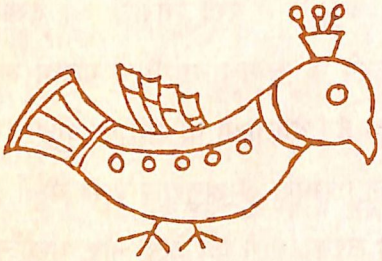

सगुन चिरैया

थाप चिरैया

सपछप कांट

सियाऊ माता

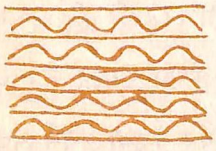

निगही पांत

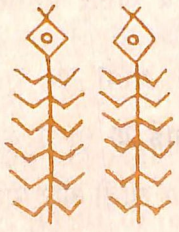

कन खजूरा

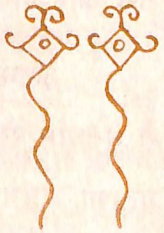

नाग का जोड़ा

करवा चौथ का "गौरी बाग" –

अवध में एक कहावत प्रसिद्ध है –

"करवा करवारी जा के बरहें दिन दीवारी"

और औरतें उंगलियों पर इसका हिसाब जोड़ा करती हैं। इन त्यौहारों का न सिर्फ बहार और पैदावार–फसल से नाता रहता था बल्कि इनमें आपस में भी बड़ा भावुक सम्बन्ध है। जैसे दशहरे के दिन तुलसी की "लगन पूजा" आरंभ करके कार्तिक की पूर्णिमा को उनकी "बरन पूजा" की जाती है। दशहरे से ही दीवाली की बुनियाद इस तरह पड़ती है कि घर में यम की दिशा (दक्खिन) छोड़ कर पूरब, पश्चिम या उत्तर की किसी दीवार पर ऐपन का चौका लगाया जाता है और फिर गेरू में भीगे सूत फटक कर छींटे मार दिये जाते हैं। इसी सीमाबन्दी में चारों तरफ की बेलें डोर छिटक कर और बूंदें रख रख कर ज्यामितीय आधार से बनाई जाती हैं। इसके बाद थोड़ा थोड़ा चित्रण रोज़ किया जाता है। अवध का करवा बिहार की मधुबनी की तरह रंगारंग होता है और उसमें विषयों की जितनी विविधता है किसी भी भारतीय लोक चित्रण में नहीं है। करवा के लिए शुभ दीवार पर ऐपन से उजले आयत में गौर लिखी जाती है जिसके चारों ओर सुन्दर रंगीन अलंकरण बनते हैं।

पहले ये सारे रंग प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त किए जाते थे। ऐपन से सफ़ेद, काजल से काला, सिंदूर से नारंगी, इंगुर से लाल, हरसिंगार से पीला, कुसुम के फूल से गुलेनारी, सुआ पत्ते से हरा रंग बनाते थे और फिरप्योरइया, रामरज, हिरमिंजी, खड़िया वगैरह का भी इस्तेमाल होता था।

आलेखन के बीच गौरा पार्वती का लोक आकृति स्वरूप "गौर" नाम से बनाया जाता है। श्याम पट सरीखे उनके देह विग्रह में तमाम पूजा प्रतीक बनाए जाते हैं।

भित्ति चित्रांकन में चिड़ियों के लोक स्वरूप

तरह तरह के गहने पहनाए जाते हैं और परम्परागत रूप से चिड़ियों वाली चुनरी डाली जाती है। गौर के ऊपर शिव की स्थापना होती है जिसके दाएं बांए सूरज चांद बनते हैं। गौर के चरणों में सुहाग सामग्री, आईना, कंघी, पलंग, पिटारी, कजरौटा, सिंदौरा, खड़ाऊं आदि रखा जाता है। नीचे ईख का खेत बनाया जाता है। गौर के एक तरफ गंगा–जमुना का संगम और दूसरी तरफ तुलसी, वृन्दावन लिखा जाता है। लोककथा के आधार पर नीचे करवा पूजती हुई बहन बनाई जाती है जिसने चन्द्र दर्शन से पहले ही पेड़ की डाल पर चलनी में रखे चिराग को देखकर पूजा कर–ली थी। उसी के सामने बहंगी में करवा लाता हुआ भाई बनाया जाता है। देवताओं के आयुध, कुछ मंगल चिन्ह, पशुपक्षी या कुल परम्परा के अनुसार कुछ चीजें और लिखी जाती हैं। चारों तरफ तोतों की बेल, मोर, मछलियां, और नींबू चटाई की बेल बनायी जाती है।

चटक रंगों की ये नौ बहार करवा चौथ पर देखते ही बनती है। आज भी लाखों घर इन भित्ति आलेखनों से गुलज़ार होते हैं। अवध का यह "गौरी बाग" लोक कला की उत्तम परम्परा है। सुहागिनें इस चन्द्रोदय व्यापिनी चौथ का व्रत अपने पति की रक्षा, आयु, सुख और स्वास्थ्य के लिए रखती हैं। कर्क चतुर्थी के चांद की भी अलग तक़दीर होती है जिसे एक साथ लाखों स्त्रियों के अर्घ्य मिलते हैं। उस दिन सुहागिनें कामदार लहंगे चुनरी में सजकर नथ और पायज़ेब ज़रूर पहनती हैं।

अवध में शादी के साल ही लड़की की ससुराल में धूमधाम से भाई के हाथों करवा भेजा जाता है। चूरा, बताशा, लहंगा या साड़ी और पीतल का गेडुवा इनमें अवश्य होता है। कहीं–कहीं चांदी का करवा भी जाता है। यही करवा पहले पूजा जाता है और फिर सारी उम्र औरतें

उसी से करवा पूजती हैं।

सारे दिन की व्रत औरतें चन्द्रोदय होने पर गौर की पूजा करती हैं। आंगन में कोंडरा (कुण्डलीदार चौक) रखकर भी करवा पूजा जाता है। करवा पूड़ी, पुए से या फिर चावल, बताशे से भरा जाता है। करवे पर चौमुख चिराग़ जलता है और उसमें तिन की सात सींकें लगाई जाती हैं। कहते हैं कि करवे की टोंटी से ही जाड़ा निकलता है।

गौर का करवा जल से भरा जाता है। पूजने वाली अगर साथ में सुहागिनें हुईं तो उनसे करवा बदलती है नहीं तो गौर से ही करवा बदल लेती हैं। फिर चौथ की चार कथाएं कही जाती हैं। बाद में देवर भाभियों को अरघ दिलाते हैं। हाथ में नथ के मोती और बालों की लट लेकर औरतें पानी धार से चांद को अर्घ्य देती हैं। उस समय महावर दार पैर के अंगूठे के नीचे चावल का चौफर (एक पकवान) दबा रहता है।

इस दिन फरे, कढ़ी, फुलौरी, चावल, रोटी जैसे कच्ची रसोई के विशेष पकवान बनते हैं जिनका पहला भाग "सोना धोबिन" के नाम से निकाल कर घर की धोबिन को भेज दिया जाता है।

अवही आंठें (अहोई अष्टमी)–

अहोई अष्टमी को अवध में "अवही आठें" के नाम से जाना जाता है। कार्तिक कृष्ण पक्ष की इस अष्टमी में जो कथा कही जाती है उसमें इस त्यौहार को मुस्लिम घर में मनाये जाने की बात निकलती है। उसी मुस्लिम घर से जो दो फरे फेंके गये थे वही ननद भौजाई ने उठाकर खा लिये थे और फिर पुत्रवती हो गई थीं। अहोई अष्टमी का जो लोक चित्रांकन दीवार पर गेरू से रखा जाता है उसमें भी काजल से मुगल मुग़लाइन तथा इसके अतिरिक्त चांद, सूरज, गंगा–जमुना, हनुमान, गणेश, सगुन चिरैया, शंकर–पार्वती, तुलसी, आंवला, सांप बिच्छू आद भी लिखे जाते हैं। एक जगह आठ मुसलमान हाथ में हुक्का लिये बनाये जाते हैं। पुत्रवती स्त्रियों के इस व्रत में पूरी, कचौड़ी, बरा, फरा, रोटी, पिन्नी और फुलौरी का पुजापा बनता है, जो आठ–आठ की गिनती में सनकिया (मिट्टी का प्याला) में चढ़ता है लेकिन बच्चा होने या शादी होने पर दुगुना चढ़ाया जाता है। इसके लिये कहावत है –

सहजै आठ आठ

बारे कोंदवारे सोलह।

अहोई अष्टमी का यह त्यौहार केवल पश्चिमी और दक्षिण पश्चिमी अवध में ही होता है और कहीं नहीं देखा जाता है। हरदोई जिले में चौरीठे से दीवार लीप कर काली गौर रखी जाती है और रंगीन चित्रण भी किया जाता है।

कनागत की सांझी–

अवध में कनागत में किसी देवपूजा का कोई पर्व नहीं होता। पूरब के जीवित्पुत्रिका व्रत या पश्चिम के महालक्ष्मी जैसे त्योहारों की यहां कोई प्रथा नहीं। पुराने लखनऊ के सआदतगंज मण्डी में पश्चिमी उत्तर प्रदेश से आकर बसे अनाज व्यापारी परिवारों के प्रभाव से मंदिरों में सांझी होती है। लखनऊ में अन्नपूर्णाजी का मंदिर उसके लिए विख्यात है। सांझी ब्रज, मालवा, बुन्देलखण्ड की प्रमुख कलात्मक परम्परा है जिसकी आकर्षक रचनाएं दीवार पर रखी जाती हैं लेकिन यहां सांझी ज़मीन पर चौक की तरह सजायी जाती है और उन दिनों बराबर रात्रि जागरण के साथ नाच, नौटंकी, नाटक, स्वांग, मरथरी आदि हुआ करते थे। अब ये परम्परा नाममात्र को रह गई है।

कुंआर नवरात्रि के सिमरा–सिमरी–

अवध के हरदोई जनपद में आश्विन नौ दुर्गा के दिनों में प्रतिपदा से नवमी तक लड़कियां मिट्टी के सिमरा–सिमरी बनाती हैं, ये शिव–पार्वती का स्वरूप होते हैं। गांव के एक घर में ही इनकी स्थापना होती है। इनके साथ गोबर से चांद, सूरज, खिलौने आदि भी रखे जाते हैं। इनको सांझी की तरह "संझा" कहा जाता है। इन लोक देवताओं को पीले रंग का कपड़ा रंग कर पहनाया जाता है। सभी घरों की लड़कियां फूल लेकर गाती हुई आती हैं और इन देवताओं पर फूल चढ़ाती हैं। इसे फूल डालना कहते हैं। लड़कियां भूखे प्यासे ही ये पूजा करती हैं और गीत में गाती भी हैं–

पतरी फुलकिया जो जन खाय
सो गौरा की खाल चबाय।

दीपावली–

पश्चिमी तथा मध्य अवध में दीवाली भी करवा और हरछठ की तरह दीवार पर लिखी जाती है। दीवाली का आलेखन प्रायः बहुरंगी ही होता है। मध्य अवध की दीवाली में रचना सामग्री बहुत प्राचीन शैली की नहीं होती है। चारों तरफ आयताकार फूल–पत्तों के बेल–बूटे बनाये जाते हैं, बीच में गणेश–लक्ष्मी के सैद्धांतिक या लौकिक स्वरूप बनाए जाते हैं। चारों तरफ स्वस्तिक, कमल, पक्षी, मछली, मन्दिर, गाय, तुलसी, प्रदीप आदि का चित्रण किया जाता है जिनके लिए कोई विशेष परिपाटी नहीं है। कहीं कहीं बर (बरगद) का पेड़, द्रोपदी, पांचों पाण्डव, बीमाता (सौत), देवरानी, जिठानी, सांप, बिच्छू आदि की रचनाएं की जाती हैं। यही दीवाली के आलेखन पश्चिम अवध में तथा गंगापट्टी के घरानों में बिलकुल अलग तथा विशिष्ट लोकशैली में देखने को मिलते हैं। हरदोई जनपद के कुछ कस्बों में तथा लखनऊ, चौक के पुरबिए खत्रियों में दीवाली बिलकुल अलग ही ढंग से रखी जाती है। दीवार पर एक वर्गाकार स्थल गोबर से लीप दिया जाता है जिसके चारों कोने गोलाकार में उभार दिए जाते हैं, ऊपर बीच में सिर की तरह वृत्त और वृन्त (गरदन) बनता है तथा नीचे दो पांव बनाए जाते हैं। गोबर सूखने पर मकोय या तोरई के पत्तों को मींज कर हरेरी फेरी जाती है। इस रचना में अलग रंगों का प्रयोग नहीं किया जाता है केवल उजले एंपन की बूंदों से कुछ बनाया जाता है। कटोरी में ऐपन लेकर तर्जनी से बिंदियां रखी जाती हैं और उन्हीं बिंदियों के क्रम से विषय का आभास दिया जाता है। बीच में अक्षयबट को देवता के रूप में रखा जाता है। इसे कदली स्तम्भ भी कहा जाता है, जो सम्पत्ति, सम्पन्नता और ऐश्वर्य का प्रतीक है। साथ में सूरज, चन्द्रमा, शिव मंदिर, तुलसी का पौधा बनाया जाता है ऊपर पांच या सात पुतले बनते हैं। कुछ लोग खेल खिलौने भी बनाते हैं। स्वस्तिक का लिखा जाना अनिवार्य है। इसी चित्रण के आगे "हटरी" (दीवाली के दिनों में बाजारों में बिकने वाला कच्ची मिट्टी और सीकों से बनाया हुआ मन्दिर) रखकर लक्ष्मी–गणेश का पूजन किया जाता है। लक्ष्मी पूजन के पहले केन्द्रीय अवध में जलती हुई सन की सीकों से अलाय बलाय निकाली जाती है तो पूर्वी क्षेत्र में सन की जलती हुई रस्सी ले जायी जाती है।

अवध में गंगापट्टी कान्यकुब्ज घरानों के दीपावली आलेखन को इस अंचल के सर्वोत्तम भित्तिचित्र की संज्ञा दी जा सकती है। इसे अजन्ता की विश्व प्रसिद्ध गुहा चित्रों का वंशधर कहा जा सकता है और मिथिला की मधुबनी कला की सहेली समझा जा सकता है।

दीवाली का यह चित्रपट बड़े विशाल क्षेत्र में लिखा

जाता है। पूरे आलेखन का प्रमुख पूजा केन्द्र मध्य में एक सुसज्जित लोकांकन "सुरूटू" होता है जिसके मध्य में शिव–पार्वती बने होते हैं। इसे तोरण से महिमा मण्डित किया जाता है। इसके दोनो ओर एक एक बैल और एक एक शेर बैठा होता है। सुरूटू के नीचे सात राजहंस एक पांत में रखे जाते हैं। बायीं तरफ काले सफेद वर्गों का एक शतरंजी नमूना रहता है जिसे "दिन रात" कहते हैं। दूसरी ओर मण्डप में देवता रहते हैं। सुरूटू के ऊपर कालिया नाग–मर्दन करते हुए श्री कृष्ण का सुन्दर चित्रण होता है। सबसे ऊपर दायें–बाएं चांद, सूरज और चारों तरफ साल भर का पुजापा बनता है। सिंगार का सामान चक्की और सौतें जैसे लोक विषय भी लिखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त सारे आलेखन में रामायण, भागवत, महाभारत तथा पुराणों के अनेक सुप्रसिद्ध प्रसंग बड़ी कुशलता से चित्रित किए जाते हैं जिनका कोई अंत नहीं है।

इस आलेखन में कथा या दृश्य का प्रस्तुतीकरण इतने कौशल तथा सहज ढंग से सूक्ष्मता के साथ किया जाता है कि देखने वाला आनन्दित और अचम्भित हुए बिना नहीं रह सकता। अपनी एक विशिष्ट लोकशैली में गुनागर स्त्रियां इस परम्परा का संवहन आज भी कर रही हैं जिस पर हमें गौरवान्वित होना चाहिए। ये कला हज़ारों बरस से पीढ़ी दर पीढ़ी को सौंपी जा रही है लेकिन आज कला के सांस्कृतिक प्रदूषण के वातावरण में धीरे–धीरे धुआं भी होती जा रही है। इसे पुनर्जागृत करने तथा अनवरत बनाए रखने के लिए विशेष प्रयास तथा विशेष संरक्षण की आवश्यकता है।

ऐपन–

ऐपन की थाप हमारी परम्परा का एक सांकेतिक दर्शन है। भारत की सनातन आस्था में पंचदेवोपासना का विशिष्ट विधान है। पूरे प्रायःद्वीप में इन पांचों देवताओं का अपना–अपना प्रमुख क्षेत्र होते हुए भी ये पांचों सम्मिलित रूप से हर कहीं समान तरह से आदरित होते हैं।

ये देवता हैं – सूर्य, विष्णु, गणेश, दुर्गा और शिव।

सदा *भवानी* दाहिने, सम्मुख होंहि *गणेश*।
पांच देव रक्षा करें, *दिनकर, विष्णु, महेश*।।

सूर्य पूजा का प्रधान केन्द्र काश्मीर प्रदेश रहा है जहां मार्तण्ड तीर्थ है। वैष्णव भक्ति धारा का प्रमुख स्थल राम और कृष्ण की जन्मभूमि उत्तर भारत है। गणपति महाराष्ट्र कोंकण क्षेत्र के अधिदेवता हैं। दुर्गा उपासना का प्रान्त है बंगाल, आसाम, आदि का पूर्वांचल भू–भाग और समस्त दक्षिण के प्रधान देवता हैं – शिव। वैसे शास्त्रोक्त विधि से निर्मित प्रत्येक शिवालय में ये पांचों देवता उपस्थित रहते हैं जिनमें शिव केन्द्र स्थित होते हैं।

यही पांचों देवता सूत्र रूप से हाथ के पंजे के एक छवि अंकन में उपस्थित माने जाते हैं। वैसे भी भारतीय विचारधारा में अपने भीतर निहित सत्य को, मनोबल को, कार्मिकता को पूजनीय समझा गया है। कर्मठ हाथों को रत्नमूर्ति की संज्ञा दी गई है। सुबह उठ कर दर्शन करने का निर्देश दिया गया है। और कहा गया है –

कराग्रे वसति लक्ष्मी
करमध्ये सरस्वती।
कर मूले तु गोविन्दः
प्रभातेकर दर्शनम्।।

देहातों में घर के बाहर दीवार सज्जा में ऐपन, चूने या गेरू से थापें लगायी जाती हैं।

देवी मंदिरों का द्वार ऐपन की थापों से सिंदूर सहित

पूजा जाता है। चैत, बैसाख, जेठ, आषाढ़ की चारों कृष्णपक्ष की अष्टमी (बसौढ़ा पूजा) को देवी पूज कर लौटी हुई औरतें इसी ऐपन की थाप से घर का दरवाजा पूजती हैं। ब्याह कर आई हुई नई दुल्हन भी परछन के बाद सबसे पहले घर के दरवाजे पर ऐपन की थापें ही लगाती है। तुलसी का एक प्रसिद्ध दोहा इसी सन्दर्भ में है –

अपनो ऐपन निज हथा
तिय पूजहिं निज भीति
फरइ सकल मन कामना
तुलसी प्रीति प्रतीति।

घर में शीतला अष्टमी पर गोबर लिपी दीवार पर ऐपन की सात थापों को रखा जाता है तो नवजात शिशु होने पर छठी के मौक़े पर बच्चे की बुआ ऐपन की छः थापें रख कर ज़च्चा से छठी पुजवाती है। यह छः मातृकाओं की पूजा का विधान है।

ब्याह जनेऊ में मण्डप छादन के समय जो पांच पुरुष मिलकर आंगन में खंभ गाड़ते हैं, इस शुभ अनुष्ठान के बाद ही स्त्रियाँ उन सबकी पीठ पर ऐपन की थापें लगाती हैं। इसी तरह पूर्वी अवध में हरछठ के दिन पूजा के बाद मां अपने पुत्र को यह पूजा आशीर्वाद का परम प्रतीक देती है

पीठ पे पंजा धरें आयै के
मैहर केरि सारदा माय (आल्हा)

और पीठ पर आशीर्वाद स्वरूप पूजा के ऐपन से भरा हाथ का पंजा लगाती है।

पश्चिमी अवध तथा केन्द्रीय अवध की कुछ जातियों में कोहबर के स्थान पर केवल ऐपन की एक थाप ही रखी जाती है। कहीं–कहीं हरछठ में भी ऐपन की छः थापें ही रखने का रिवाज है।

तिलक की रस्मों में विशेष कर कायस्थ (श्रीवास्तव) कुल में तन्ज़ेब के थान (७ या ६ गज़ तह किया हुआ कपड़ा) पर लड़की के हाथ की छाप ऐपन से दिलायी जाती है। यह नेग बुआ या भाभी का होता है, जो ये थाप दिलाती है और फिर उसे संवार कर सिंदूर से सजाती है। मलमल का यही थान तिलक के मंगल थाल पर रख कर वर के घर भेजा जाता है। इस थान से लड़के का जामा बनता है जिसे दरजी इस हुनर से सिलता है कि वह थाप लड़के के ऐन पीठ पर पड़ती है।

वट सावित्री पर्व पर घर के बाहर जाकर बरगद पूजने वाली स्त्रियां बरगद के तने पर ऐपन से बारह बारह थापें देकर उसे सिंदूर से टीपती हैं।

ऐपन की पवित्रता का प्रमाण यहां तक है कि कई त्यौहारों या संस्कारों पर पूजा में काम आने वाले पात्र हल्दी लगे ऐपन से पहले रंग लिए जाते हैं तब पूजा में प्रयुक्त होते हैं। करवा चौथ में मिट्टी या पीतल का करवा, बरगदाही की हंडिया, जगन्नाथ के सोमवार की हांडी, हरछठ की कुल्हिया, कटोरी, और दहंगल बरौने की मटकियां, ये सब ऐपन से ही रंगी जाती हैं। ऐपन से ही पश्चिमी अवध में करवा, दीवाली तथा केन्द्रीय अवध में कोहबर और हरछठ रखे जाते हैं।

लोक चित्रण में सूर्य चन्द्रमा

सूर्य परम्परा–

लोक कलाओं के चित्रण में जो हमारे प्रमुख समक्ष देवता हैं, वे सूर्य, चन्द्रमा हैं। सूर्य सारे नक्षत्रों में सबसे अधिक ज्योतिर्मान है। सूर्य पंचदेवोपासना के प्रमुख प्रत्यक्ष देवता रहे हैं। सूर्य के अर्ध्य देने, अंजली देने और सूर्य

नमस्कार की परम्परायें सारे भारत में प्राचीन समय से प्रचलित हैं। सौर पंचांग से ही संक्रान्ति के त्यौहार खिचड़ी और लोहड़ी आदि मनाए जाते हैं।

हमारी संस्कृति में सूर्य मन्दिरों का बड़ा महत्व रहा है। कश्मीर तो सूर्योपासना का प्रमुख प्रदेश रहा है। वहीं मट्टन (मार्तण्ड) का सूर्य मन्दिर है। मुल्तान (मूल स्थान) का सूर्य मन्दिर विदेशी पर्यटकों द्वारा प्रशंसित है। कोणार्क (उत्कल) तथा मोढेरा (गुजरात) का सूर्य मन्दिर आज भी सुविख्यात है। नवजात शिशु को भी जन्म के बारहवें दिन आंगन में निकालकर सूर्य दर्शन कराया जाता है।

अवध में सूर्य का व्रत स्त्रियां पूस तथा भादों के इतवारों में करती हैं। पूस के इतवार लोकरीति के अनुसार रहे जाते हैं जिनमें मध्यान्ह से पहले सूर्य की पूजा की जाती है। फूल, कांसे या तांबे की थाली में लाल चंदन या रोली से सूर्य का चित्रण किया जाता है।

कहीं–कहीं गोबर से ज़मीन लीप कर सूखे आटे से सूरज रखा जाता है। इस रचना में सूर्य की सात परिधि बनाई जाती हैं जो रश्मि कहलाती हैं। सूर्य कुंड भी सूर्य पूजन और सूर्याभिमुखी होकर स्नान करने के लिए बनवाए जाते थे। सूर्य नेत्र विकार, चर्म विकार आदि रोगों को दूर करने वाला देवता है। हमारा गायत्री मन्त्र वास्तव में सविता नाम से सूर्य की उपासना का ही मन्त्र है। अवध के प्रसिद्ध प्राचीन सूर्यकुंडों में बहराइच का बालार्क (बाल + अर्क) अर्थात् नवोदित सूर्य कुंड, तीर्थ, इतिहास प्रसिद्ध रहा है। इसके अतिरिक्त लखनऊ के सूर्य कुंड, सरइंगुदौली (जनपद लखनऊ) तथा सीतापुर जिले के सूर्यकुंड आज भी दर्शनीय हैं।

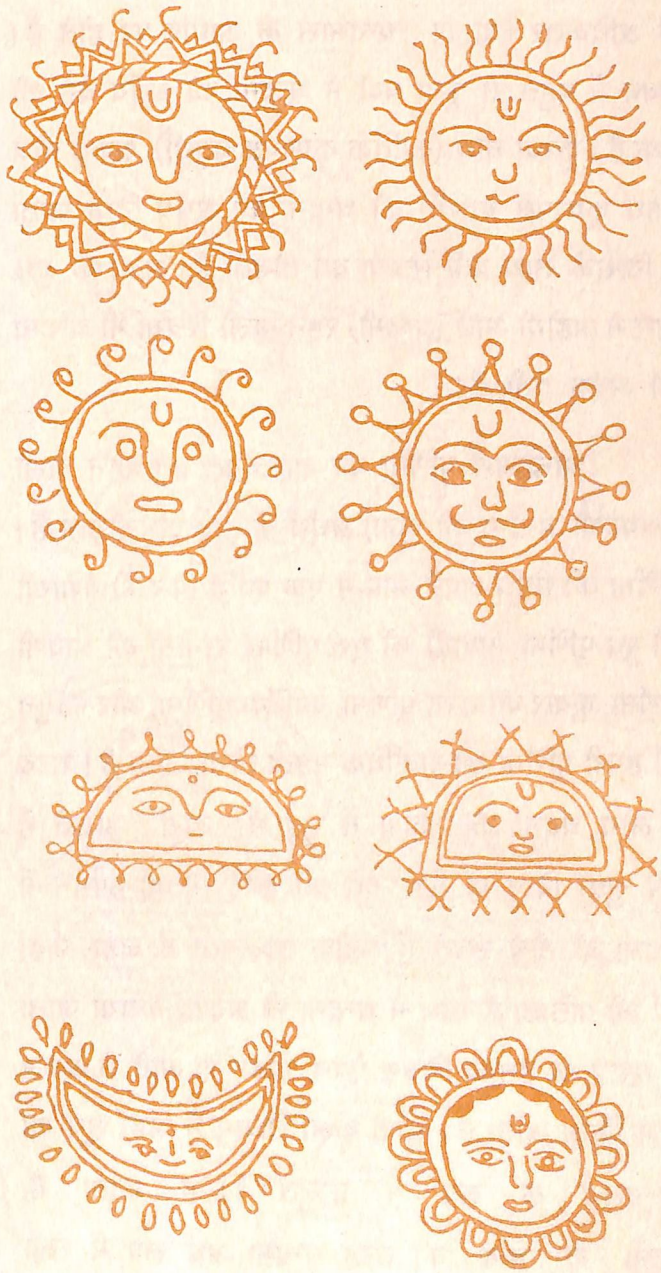

सूर्य तथा चन्द्रमा के स्वरूप

चन्द्रमा प्रणाली–

इसी तरह चन्द्रमा भी नवग्रहों में तो प्रमुख स्थान रखता ही है अष्टमांगलिक प्रतीकों में भी सम्मिलित है। चन्द्रमा तासीर से ठण्डा होने के कारण सदा वन्दनीय रहा है। चन्द्रमा की ग्रह दशा ठीक न होने पर बच्चों को सर्दी से बचाने के लिए चांदी के चांद पहनाये जाते हैं। हिन्दुओं के अधिकतर त्योहार चन्द्रमास के आधार पर होते हैं। अवध में बहुत से पूजा पर्वों में चन्द्रमा को अर्ध्य देने की प्रथा है। करवा चौथ (कार्तिक कृष्णपक्ष चतुर्थी), सकट चौथ (माघ कृष्णपक्ष चतुर्थी) को चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाता है जिसके साथ व्रती स्त्रियां व्रत तोड़ती हैं। अवध के कुछ भाग में अहोयी आठें (अष्टमी) रहने वाली स्त्रियां भी चन्द्रमा को अर्ध्य देती हैं।

चान्द्रायण पूर्णिमा का शास्त्रोक्त व्रत रहने वाली स्त्रियां भी चन्द्रमा की पूजा, अर्घ्र्य के बाद व्रत तोड़ती हैं। पूर्णिमा की तिथि अपने आप में एक पर्व है फिर भी वैशाखी की बुध पूर्णिमा, अषाढ़ी की गुरु पूर्णिमा, सनीनों की श्रावणी पूर्णिमा, कुंवार की शरद पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, और फागुन की होली पूर्णिमा को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। शरद में लोग चंद्रमा के प्रकाश में सुई में डोरा डालते हैं और सुधा बिन्दु के लिए दूध की कोई मिठाई आंगन में चन्द्रमा के नीचे रखते हैं। लोक आलेखन में जहां–जहां सूर्य की प्रतिष्ठा है साथ में चन्द्रमा भी अवश्य बनाया जाता है। धरती पर इनका चित्रण ऐपन, गोबर या आटे से अगल बगल किया जाता है। लोक कला विधान में जहां सूर्य को पूर्ण वलय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, अष्टमी के चांद की तरह चन्द्रमा अर्ध रूप में रखा जाता है।

सूर्य को तेजवान दिखाने के लिए बड़ी–बड़ी या लहरदार किरणों का प्रयोग होता है, तो चन्द्रमा की परिधि पर बिन्दु या फूल कलियों की सजावट की जाती है, जो उसके शीतल स्वभाव का प्रतिनिधित्व करती हैं। जब कभी चन्द्रमा को पूर्ण गोलाकार में रखा जाता है अर्थात् पूर्ण चन्द्रमा के रूप में प्रदर्शित किया जाता है, तो उसके मस्तक पर तिलक के स्थान पर बिन्दी लगी होती है, जो उसके कोमल कान्त होने का प्रतीक है। सूर्य, चन्द्रमा भइया दूइज की चौक में सर्वाधिक लिखे जाते है, जो पूर्वांचल को छोड़कर सारे प्रान्त में उजले ऐपन से बनते हैं।

पूर्वी अंचल में इन दोनों को गोबर से रखा जाता है। जहां करवा दीवार पर रख कर नहीं पूजा जाता है वहां कुड़रा चौक (वलयाकार) के पास चन्द्रमा ऐपन से लिखा जाता है। कहीं–कहीं डिठवन एकादशी चौक के साथ और तुलसी विवाह की पूजा में भी सूर्य, चन्द्रमा रखने की प्रथा है। भित्तिचित्र आलेखन में सूर्य चन्द्रमा बायें दांये बनाये जाते हैं। जिनमें सूर्य प्रायः बायीं ओर और चन्द्रमा दाहिनी ओर चित्रित किया जाता है। स्त्रियां अक्सर हाथ की चूड़ी रखकर भीतरी घेरा बनाती हैं। सूर्य पूरे वृत्त में रखा जाता है और चन्द्रमा आधे वृत्त में या द्वितीया आकार में बनाया जाता है। कहीं–कहीं अपवादस्वरूप ये पूर्णाकार में भी लिखा जाता है।

करवा चौथ, अहोई अष्टमी, दीवाली, और हरछठ में ये दोनों दीवार पर रखे जाते हैं। सीतापुर जनपद के बिसवां क्षेत्र में रक्षा बन्धन के भित्तीय आलेखन में भी सूर्य चन्द्रमा बनाये जाते हैं। इनका आलेखन कहीं रंगों से तो कहीं केवल ऐपन से किया जाता है। मइहर (कोहबर) या अवही आठें में ये गेरू से भी बने हुये मिलते हैं। मइहर माता के गर्भ में तथा करवे की गौरा पार्वती के भीतरी

पुजापे में भी सूरज चन्द्रमा रखे जाते हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रभा मण्डल भी उनके आचरण के अनुसार ही बनाया जाता है।

गंगा–यमुना का लोक चित्रण

भारतीय परम्परा में गंगा और यमुना भक्ति तथा प्रेम का प्रतीक हैं। गंगा–यमुना इड़ा और सुषम्ना नाड़ियों की तरह चेतनधारा के रूप में प्रवहमान रही हैं। उत्तर भारत में बहने वाली ये दोनों प्रधान नदियां सारे भारत का प्रतिनिधित्व करती हैं। देव मंदिर के देवताओं के साथ–साथ इन दोनों पवित्र सरिताओं की प्रतिष्ठा रही है। मकर वाहिनी गंगा तथा कच्छपारुढ़ यमुना के मूर्ति शिल्प हज़ारों बरस पुरानी परम्परा में हैं।

अवध के लोक चित्रांकनों में गंगा यमुना भूमि तथा भित्ति, हर प्रकार के आलेखों में अनिवार्य रूप से लिखी जाती हैं। अवध में गंगा स्नान के लिये माघ और कार्तिक के महीनों के अतिरिक्त माघी पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा, भदई गंगा, गंगा दशहरा, गंगा सप्तमी आदि भी स्नान पर्व हैं। अवध की दक्षिणी पश्चिमी सीमा रेखा गंगा से ही बनती है अतः पूरे अवध में उनका सम्मान है। गंगा पर पूजा मनौती के लिये जाया जाता है। गंगा की दो सहायक नदियां सरयू और गोमती अवध के मध्य भाग से बहती हैं और इस प्रांत का गौरव हैं। भाईदूज, जो कि यमद्वितीया का पर्व है, यम के साथ यमुना की उसमें बहुत बड़ी भूमिका है। गंगा–यमुना का मिलाप पारम्परिक सद्व्यवहार, सांस्कृतिक मेलजोल की पहचान है। यह दो से मिलकर एक होने की बात है। अवध अपने गंगा–यमुनी संस्कारों के लिए मशहूर रहा है। यहां के लोक आलेखों में ये दोनों साथ–साथ ही रहती हैं।

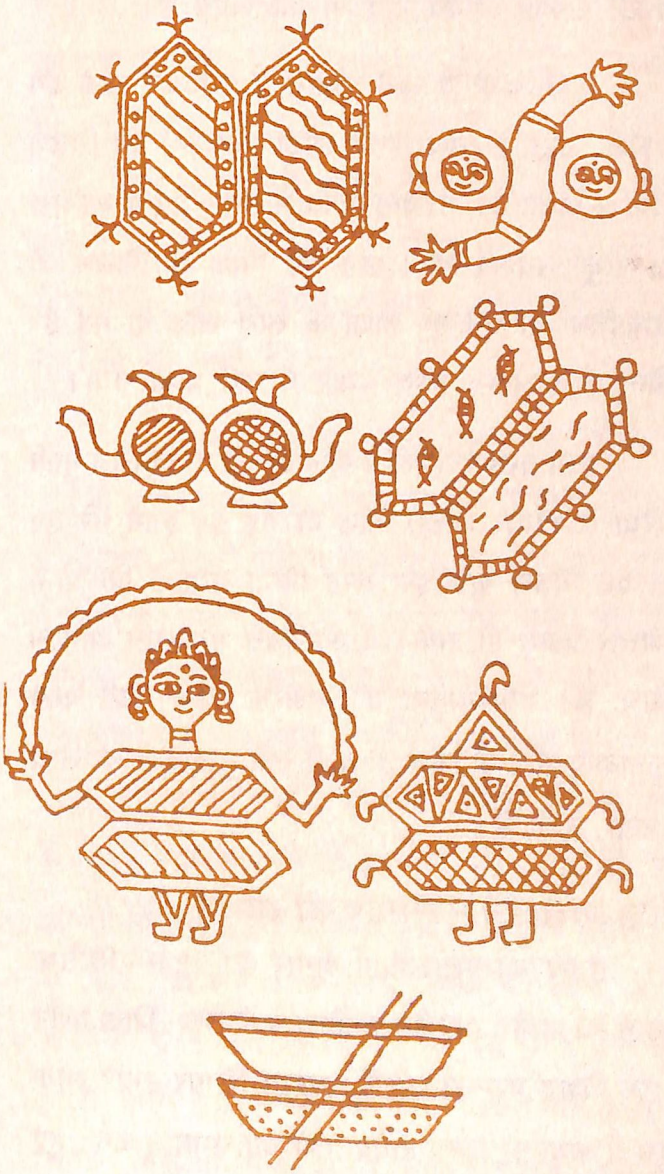

गंगा जमुना का लोक चित्रण

गंगा–यमुना की चित्रांकन शैली–

गंगा–यमुना की यहां जो सर्वाधिक प्रचलित शैली है, उसमें प्रायः दो लम्बे संलग्न षट्कोणों में प्रकट की जाती हैं जिनमें से एक में तिरछे ढंग से समान्तर लकीरें तथा दूसरे में लहरियां बनती हैं। सीधी समान्तर रेखाओं वाला अंश गहरी जमुना के स्थिर जल को दर्शाता है जबकि लहरियादार भाग लहराती गंगा का दर्पण है। इनके बाहरी तट की सज्जा विविध रूपों में की जाती है।

कहीं–कहीं ये खड़े संजोग में न होकर आड़े ढंग से जोड़ी जाती हैं, तथा इनमें छोटी मछलियों का चित्रण भी किया जाता है। पश्चिमी अवध में गंगा–यमुना का एक ऐसा संयुक्तस्वरूप भी देखने को मिला है जिसमें दो मुखाकृतियां दो घूमे हुए हाथों के साथ जोड़ दी गई है। लेकिन ये आलेखन बहुत प्रचार में नहीं पाया गया।

इसी तरह पूर्वांचल में जल से भरी दो विपरीत मुखी झारियां (टोंटीदार लोटा) जोड़ दी गई हैं। इनमें भरे हुए जल का चित्रण कुछ इस तरह किया गया है कि दोनों में अन्तर प्रकट हो सके। ये आलेखन भी अपने आप में विशिष्ट है। गंगा–यमुना की संलग्न रचना कहीं कहीं त्रिभुजाकार शीर्ष के साथ तो कहीं स्त्री मुखाकृति के साथ भी रखी जाती हैं।

भित्ति आलेखन में सिंगार का सामान–

हमारे काव्यशास्त्रों में श्रृंगार का एक विशिष्ट प्रावधान है। प्राचीन भारतीय साहित्य में भी नख–शिख वर्णन की एक विशद परम्परा रही है। सुहाग सिंगार हमारे लोक जीवन में सदा से प्रणय संवेदनाओं का उपमान बने हुए हैं। सोलह सिंगार उसी के प्रतिमान हैं।

कंघी, चोटी, बिंदी, चूड़ी, आलता, सिंदूर, काजल, मेंहदी, दरपन, गहना ये सब स्त्रियोचित सिंगार के प्रमुख अवयव हैं जिनका उपयोग भारतीय इतिहास के हजारों वर्ष की अनवरत परम्परा में आज भी किसी तरह कम नहीं है। मंदिर, मूर्तियां, चित्र साहित्य सभी के श्रृंगारिक प्रसंगों में सिंगार की बहार देखने को मिलती है। अवध के लोक जीवन की जीवन्त प्रस्तुति में जायसी ने पद्मिनी के सिंगार का अति सुन्दर निरूपण किया है –

का सिंगार ओहि बरनों राजा
ओहि क सिंगार ओही पर छाजा
बेनी छोरि बार जो झारा
सरग पतार होई अंधियारा
बरनो मांग सीस उपराहीं
सेंदुर अबहिं चढ़ा जेहि नाहीं।

हरतालिका तीज में सुहागिन स्त्रियां शिव के बाएं बैठी पार्वती की मूर्ति का गहनों, कपड़ों तथा अन्य साधनों से बड़ा सुन्दर सिंगार करती हैं। करवा चौथ को गौरीबाग से अलंकृत किया जाता है। सुहाग सिंगार पहनाया जाता है।

लोक रचनाओं में तो इन श्रृंगारिक वस्तुओं का इतना मान–सम्मान है कि कई पूजा चौकों के साथ श्रृंगार की ये चीज़ें चित्रित की जाती हैं। भित्ति अलंकरण में तो इनको लिखने का विशेष नियम है। यहां तक कि जहां जहां गौर बनती है उसके अन्दर पुजापे में भी ये सब विषय अवश्य लिखे जाते हैं।

इन विषयों में प्रमुख वस्तुएं वही होती हैं जो लोक जीवन में स्त्रियों की श्रृंगारिक अभिरूचि से सम्बन्ध रखती हैं जैसे – आईना, कंघी, सिंदूरदानी, कजरौटा, चुटीला, कंथरी (गोल मूठ की बाल सुलझाने की परम्परागत वस्तु)

सिंगारदान, महावर की प्याली आदि, इनके साथ साथ कहीं कहीं पानदान और गहनों का बक्सा भी बना हुआ मिलता है।

मंगल–सज्जा

अवंध में मांगलिक अवसरों को अधिक मनोहारी बनाने के लिए उपकरणों की सुन्दर सज्जा अवध के लोक जीवन का विशेष अंग है। द्वार के मीनेकारी के वन्दनवार, दूल्हे के सिर के मौर, सजे हुए सूप, डलवे, जड़ाऊ पंखे, कामदार बटुवे इनके अच्छे उदाहरण हैं। नाखुर की रस्म के साथ ही यहां दूल्हा–दुल्हन के पांव का महावर महीन सीकों से बड़ा कलापूर्ण लिखा जाता है। अवध में लोक कलाओं के अन्य अलंकरण यहां शुभ संस्कारों पर भेजे जाने वाले उपहारों में देखने को मिलते हैं। विवाह के कलश की तरह घर में शिशु जन्म होने पर बच्चे की दादी द्वारा चरवे का कलश भी कलात्मक ढंग से गोठा जाता है। लड़की के विवाह में तिलक के दिन थाल पर रखकर लग्न पत्रिका के साथ तुलसी पत्र भी लड़के के घर भेजा जाता है। शाही फ़रमान जैसा कपड़े या कागज़ पर लम्बे आकार में लिखा गया यह तुलसी पत्र चारों तरफ से सुन्दर बेल बूटों द्वारा सजाया जाता है। ऊपर गणेश जी का चित्र बनाया या लगाया जाता है। नीचे के भाग में रोली से सतिया रखा जाता है और पारम्परिक लेखन सामग्री के अतिरिक्त सुन्दर छन्द लिखे जाते हैं। दीवाली के दो दिन के बाद भाईदूज पर की जाने वाली कलम पूजा वाले कागज़ पर सबसे पहले ऊपर रोली से गणपति का चित्र ही बनाया जाता है। लड़की के तिलक में घी और हल्दी से रंगे हुए पीले चावलों पर हल्दी सुपारी रंगीन तबक चढ़ा–चढ़ा कर रखी जाती हैं। चंदन और नारियल सजा कर भेजे जाते हैं। गोटे किरन से सजे हुए थालपोश और वहार किश्तियों पर डाले जाते हैं। लड़के की शादी में दूल्हे की नहाई चौकी पर का पानी "दहंगल–बरौने" वाली बन्द हांडियों में बांस की तीलियों से कलात्मक ढंग से बांध कर लड़की के घर भेजा जाता है। ये हांडियां लाल, पीले रंग से सजाई जाती हैं और इनका पानी दुलहन के नहाने वाले पानी में मिला दिया जाता है। ये सब लोक रीतियां अंजान नवयुगल के आपसी प्रणय सम्बन्ध की भूमिका बनाती हैं। बरौना महाभारत के सुप्रसिद्ध पात्र बब्रुवाहन (अर्जुन तथा उलूपी का पुत्र) की विवाह में उपस्थिति का प्रतीक है जो अविवाहित ही रण में मारा गया था और जिसने भगवान कृष्ण से कोई विवाह देखने की अभिलाषा की थी। हमारी उदार संस्कृत का यह कितना सुन्दर पहलू है कि हर विवाह मण्डप में बरौने का कलश लेकर बब्रुवाहन पहले से ही साक्षी के लिए आ जाते हैं।

लड़के वाले हल्दीदार आटे से खूब सुन्दर "गौरी–गौरा" गढ़ के गोटे किरन और काजल, महावर से सजा कर भेजते हैं तो उधर लड़की वाले मानिक थाल बनाने में अपना कमाल दिखाते हैं। एक बड़े थाल में आटा, गोटे, पन्नी और रंगीन चावलों से बड़ी सुन्दर आरती तैयार की जाती है जो "मानिकथाल" कहलाता है मानिक सब रत्नों में भव्य माना जाता है, थाल की भव्य सजावट ही इस नाम का संकेत है। इसी मानिक थाल से द्वार पर आए दूल्हे की पहली आरती होती है। इसी तरह लड़की के घर से बारात बुलाने के लिए तेलवारा जाता है तो लड़के की तरफ से सजी सजायी 'ऐपन वारी', बारात के चल देने की सूचना स्वरूप भेजी जाती है। लड़की वाले चौथी भेजते समय मटकों में खाझा, गुझिया, माठ, लड्डू जैसी मिठाइयां समधिन को नज़राने में भेजते हैं जिन पर रंगों से रोचक चित्रकारी की जाती है और विनोद के लिए शेरो–शायरी तथा रसिक दोहे समधी–समधिन के लिए लिखे जाते हैं।

संस्कृति विभाग, उ०प्र०
उपहार स्वरूप भेंट

पर्व त्यौहारों पर पार्थिव अलंकरण–

अवध में सावन के महीने में मंदिरों में तथा घरों में पार्थिव पूजन बहुत होता है। इस पूजा में चिकनी मिट्टी से अरघे सहित शिवलिंग, उनके ग्यारह रुद्र, पार्वती, कार्तिकेय, गणेश तथा नंदी की अति सुन्दर तथा कलात्मक प्रतिमाएं बनायी जाती हैं। इसी तरह हरतालिका तीज और सन्तान सप्तमी में शिव पार्वती और गणेश की पार्थिव मूर्ति बनाई जाती हैं। उतरते भादों में पड़ने वाली ऋषि पंचमी को कुश या मिट्टी से पांच महर्षि बनाकर पूजे जाते हैं। कहीं–कहीं ये ऋषि दीवार पर भी काजल से लिखे जाते हैं। सारे अवध में दीपावली में मिट्टी के सुन्दर घरौंदे बनाने की लोकरीति है। गांव देहातों में ये घरौंदे हिन्दू–मुस्लिम हर घर में बनते हैं, लड़कियां इन्हें जाली झरोखों, छज्जों, मेहराबों से सजाती हैं। इनमें गुड़िया और खिलौने रखे जाते हैं और दीवाली की रात रोशनी की जाती है। औसान बीबी की दुरकैया में मिट्टी की ही सात ढुरकी रखी जाती हैं। होली में गोबर के बल्लों को बनाते हुए स्त्रियां उनमें भी चांद, सूरज, पान, थाली और होली आदि की रचनाएं करती हैं। सुहाग लेने के लिए पूजा की गौर प्रायः गोबर से ही बनती है लेकिन कहीं–कहीं तुलसी के नीचे की मिट्टी की गौर भी बनाकर रख ली जाती है। बसन्तपंचमी के सुहाग की थाली में घोबिन मिट्टी के गौरा–महादेव बनाकर लाती है।

संकटा की पिन्नी, हरियाली तीज, और सकट चौथ पूजा में पत्थर के पीढ़े पर देशी घी से लोक देवी–देवता लिखे जाते हैं। यही कहीं–कहीं चंदन से भी चित्रित किए जाते हैं। अवध में कला के ऐसे विषयों और कलात्मक सन्दर्भों के विस्तार का कोई अन्त नहीं है।

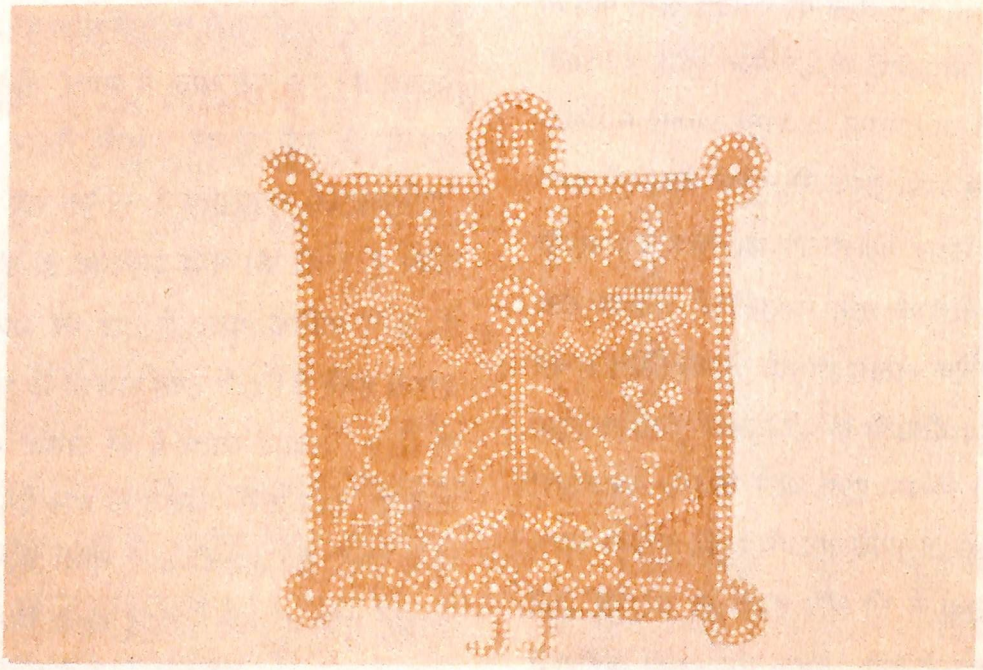

दीपावली आलेखन (पश्चिमी अवध शैली)

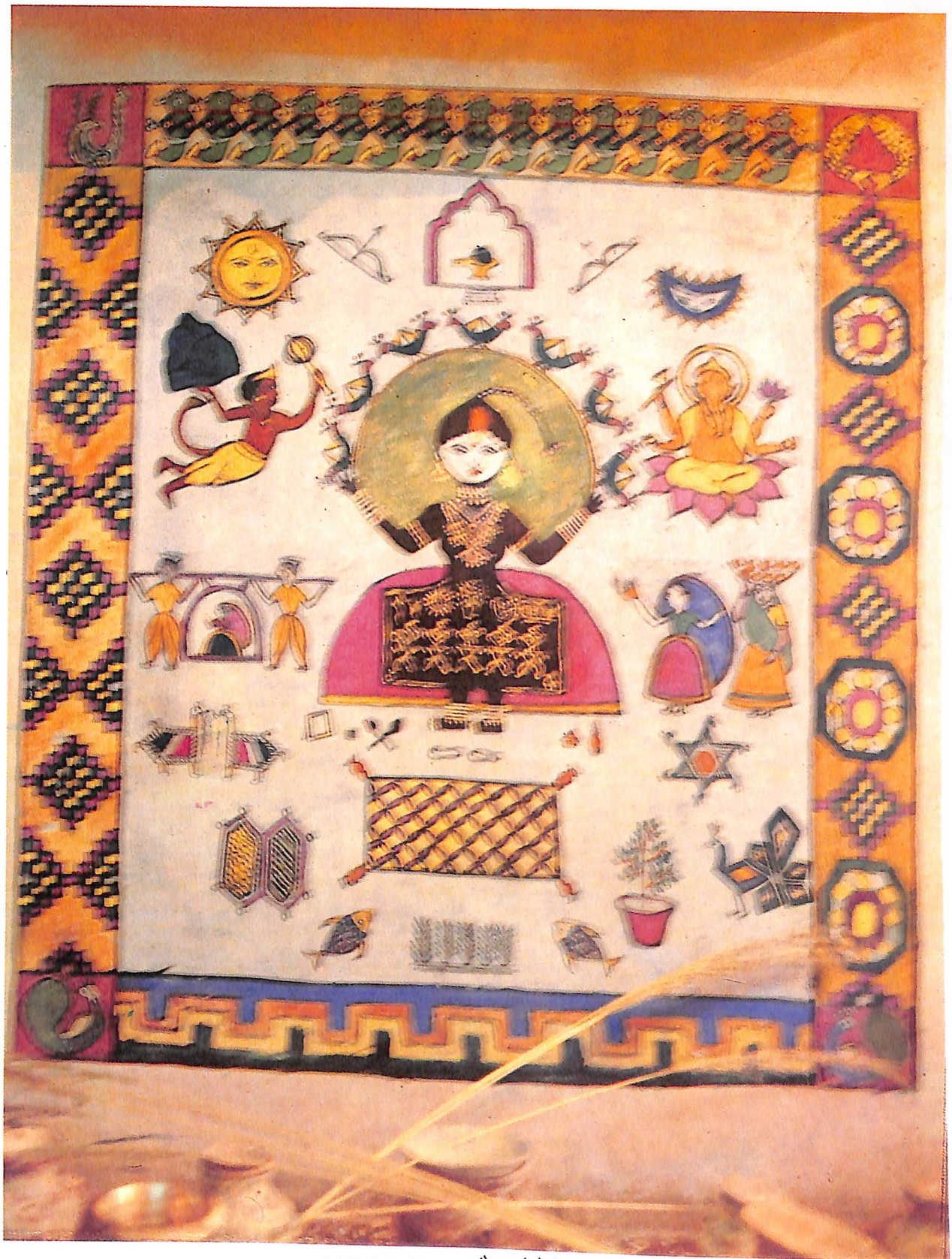

अवध का करवा चौथ (गौरी बाग)

दीवाली का भित्ति आलेखन (गंगा पट्टी शैली)

उ० प्र० सांस्कृतिक कार्य विभाग की अध्ययन वृत्ति योजना 93 - 94 के अन्तर्गत प्रकाशित एवं
प्नार आफसेट, लखनऊ (फोन : 243757) में मुद्रित।